परिशिष्ट

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ-सूची

क्रम–संख्या	पुस्तक का नाम	रचनाकार/संपादक	प्रकाशक	संस्करण/वर्ष
1.	दुष्यंत रचनावली भाग – 1	सं.– विजय बहादुर सिंह	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली	द्वितीय संस्करण, 2007
2.	दुष्यंत रचनावली भाग-2	सं.– विजय बहादुर सिंह	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली	द्वितीय संस्करण, 2007
3.	दुष्यंत रचनावली भाग – 4	सं.– विजय बहादुर सिंह	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली	द्वितीय संस्करण, 2007

सहायक ग्रंथ-सूची

क्रम–संख्या	पुस्तक का नाम	रचनाकार/संपादक	प्रकाशक	संस्करण/वर्ष
1.	अन्न हैं मेरे शब्द	एकांत श्रीवास्तव	आधार प्रकाशन, हरियाणा	1994

2.	आधुनिक कवि: निराला	सं.– डॉ. रघुवंश	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	1999
3.	आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द	बच्चन सिंह,	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	संशोधित संस्करण, 2010
4.	आधुनिक हिन्दी कविता में वैचारिक पक्ष	रतन कुमार	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	प्रथम संस्करण, 2000
5.	आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द	सत्यकाम	राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 1994
6.	आस्था और सौंदर्य	रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली	पहली आवृत्ति, 2002
7.	इक्कीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य : समय, समाज और संवेदना	सं.–रवींद्रनाथ मिश्र	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	प्रथम संस्करण, 2011

8.	इतिहास और आलोचना	नामवर सिंह	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,नई दिल्ली	तीसरी आवृत्ति, 2006
9.	एक आवाज : सबसे अलग दुष्यंत की रचनाशीलता,	धनंजय वर्मा	प्रस्तुति प्रकाशन, मध्यप्रदेश	प्रथम संस्करण, 2008
10.	कबीर	हजारीप्रसाद द्विवेदी	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,नई दिल्ली	दसवीं आवृत्ति, 2003
11.	कबीर ग्रंथावली	सं.- डॉ. श्यामसुन्दर दास	नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी	23वाँ संस्करण, संवत 2059 वि.
12.	कवि अज्ञेय: विश्लेषण और मूल्यांकन	ब्रजमोहन शर्मा	इतिहास शोध संस्थान, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2000
13.	कविता का आत्मपक्ष	एकांत श्रीवास्तव	प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली	द्वितीय संस्करण, 2010

14.	कविता की जमीन और जमीन की कविता	नामवर सिंह	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली	पहली आवृत्ति, 2011
15.	कविता की लोकधर्मिता	रमाकांत शर्मा	रॉयल पब्लिकेश, राजस्थान	2009
16.	काव्य–सृजन और शिल्प–विधान	रोहिताश्व	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	प्रथम संस्करण, 2006
17.	कुछ विचार	प्रेमचन्द	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	2008
18.	गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम	सुवास कुमार	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2010
19.	गाँधी : समय, समाज और संस्कृति	विष्णु प्रभाकर	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2003
20.	चिंतामणि भाग–1	रामचंद्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी	सं. 2058 वि.

21.	चिंतामणि भाग–3,	सं.- नामवर सिंह	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,नई दिल्ली	तृतीय आवृत्ति, 2004
22.	दुष्यंत कुमार और नयी कविता : एक अनुशीलन	बनय सिंह	साहित्यागार, जयपुर	प्रथम संस्करण, 2000
23.	दुष्यंत कुमार की गज़लों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. सरदार मुजावर	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	2003
24.	दुष्यंत कुमार : रचनाएँ और रचनाकार	गणेश तुलसी अष्टेकर	पंचशील प्रकाशन, जयपुर	1989
25.	नयी कविता के प्रबंध काव्य-शिल्प और जीवन-दर्शन	उमाकांत गुप्त	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	द्वितीय संस्करण, 2000
26.	निबंधों की दुनिया	हजारीप्रसाद द्विवेदी	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2009
27.	निराला	सं.– इंद्रनाथ मदान	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	चतुर्थ संस्करण, 2008

28.	पंत की काव्य भाषा शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण	कांता पंत	त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	2007
29.	पल्लव	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,दिल्ली	सातवाँ संस्करण, 1963
30.	प्रतिनिधि कविताएँ रघुवीर सहाय	सं.- सुरेश शर्मा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	तीसरी आवृत्ति, 2010
31.	बलदेव वंशी का काव्य : सामाजिक यथार्थ	डॉ. कुलदीप कौर	अनंग प्रकाशन, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2006
32.	भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना	रामचंद्र तिवारी	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	दूसरा संस्करण, 2012
33.	भारतीय संविधान और राजनीति	डॉ. वेददान सुधीर	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2008
34.	मैं वह शंख महाशंख	अरूण कमल	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,नई दिल्ली	2012

35.	यथार्थवाद	शिवकुमार मिश्र	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2009
36.	यथार्थवाद पुनर्मूल्यांकन	डॉ. अजब सिंह	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	प्रथम संस्करण, 1998
37.	यारों के यार दुष्यंत कुमार	सं.– विजय बहादुर सिंह	यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2008
38.	शताब्दी के ढलते वर्षों में	निर्मल वर्मा	भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली	चौथा संस्करण, 2006
39.	समकालीन कविता और कुलीनतावाद	अजय तिवारी	राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 1994
40.	समाजवादी यथार्थवाद और हिन्दी कथा साहित्य	प्रेमलता जैन	शब्दसृष्टि, दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2012
41.	समय के सरोकार	सोलजी	शिल्पायन, दिल्ली	2004

42.	समांतर कहानी में यथार्थबोध	रेखा वसंत पाटिल	जवाहर पुस्तकालय, उत्तर प्रदेश	2005
43.	साहित्यिक निबंध	सं.-डॉ. त्रिभुवन सिंह, डॉ.विजय बहादुर सिंह	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	चतुर्थ संस्करण, 2008
44.	साहित्य और यथार्थ	हार्वर्ड फास्ट, अनुवादक- विजय सुषमा	अरूणोदय प्रकाशन, दिल्ली	1993
45.	स्त्री मेरे भीतर	पवन करण	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2006
46.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में प्रणय-चित्रण	पद्मजा घोरपड़े	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 1998
47.	हरिशंकर परसाई : व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि	प्रो.राधेमोहन शर्मा	भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली	पहली आवृत्ति, 1999

48.	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	त्रिभुवन सिंह	हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन प्रा. लिमिटेड, वाराणसी	पंचम संस्करण, 2054 वि.
49.	हिन्दी काव्य–नाटक और युगबोध	मृगेंद्र राय	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर	प्रथम संस्करण, 2008
50.	हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार	डॉ. स्मिता चिपलूणकर	अलका प्रकाशन, कानपुर	प्रथम संस्करण, 2001
51.	हिन्दी गज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर	मधु खराटे	विद्या प्रकाशन, कानपुर	प्रथम संस्करण, 1994
52.	हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई	मदालसा व्यास	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	प्रथम संस्करण, 1999
53.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचंद्र शुक्ल	नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी	1999
54.	हिन्दी साहित्यशास्त्र	सं. नन्दकिशोर नवल	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	2003

कोश

क्रम–संख्या	पुस्तक का नाम	रचनाकार/संपादक	प्रकाशक	संस्करण/वर्ष
1.	भारतीय साहित्य कोश	सं.– डॉ नगेंद्र	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 1981
2.	हिन्दी साहित्य कोश भाग – 1	सं. धीरेंद्र वर्मा	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी	पंचम संस्करण, 2005

पत्र/पत्रिकाएँ

क्रम–संख्या	पत्र/पत्रिकाएँ	संपादक/प्रकाशक	प्रकाशन-स्थल	अंक/वर्ष
1.	अक्षरा	सं.– विजय कुमार देव	भोपाल	अंक–90, जुलाई–अगस्त 2007
2.	आलोचना	सं.-अरूण कमल	नयी दिल्ली	सहस्त्राब्दी अंक-38
3.	आलोचना	सं.-अरूण कमल	नयी दिल्ली	सहस्त्राब्दी अंक-43

4.	पहल	सं.- ज्ञानरंजन	जबलपुर	अंक-86
5.	प्रभात खबर(हिन्दी दैनिक)		सिलीगुड़ी	20 मई 2012
6.	वर्तमान साहित्य	सं. : कुँवरपाल सिंह और नमिता सिंह	अलीगढ़	दिसम्बर 2008
7.	वागर्थ	सं. – विजय बहादुर सिंह	कोलकाता	अंक – 163/ फरवरी 2009
8.	व्यंग्य वार्ता	सं. – प्रेम जनमेजय	नई दिल्ली	अक्टूबर– दिसम्बर 2011

वेबसाइट

1.	https://sites.google.com/site/hindiebooks, Harishankar Parsai ki Vyangya Rachnayen
2.	KavitaKosh.org/kk/ चिर तृषित कंठ से तृप्त विधुर/ जयशंकर प्रसाद

संकेत-सूची

सं. – सम्पादक

डॉ. – डाक्टर

प्रा. लि. – प्राइवेट लिमिटेड

आ. – आचार्य

प्रख्यात आलोचक डॉ. धनंजय वर्मा से श्रीमती शशि शर्मा का संवाद

शशि शर्मा : आपकी दृष्टि में सामाजिक यथार्थ की परिभाषा क्या है ?

धनंजय वर्मा : सामाजिक यथार्थ की परिभाषा दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सन्दर्भो में ही हो सकती है । इस दृश्यमान जगत की इंद्रियगोचर सत्ता यथार्थ है । उसका वस्तुगत अस्तित्व है । व्यापक अर्थो में यथार्थ वह सब कुछ है, जो 'है','हुआ है', 'हो रहा है' और 'होगा' । वह समस्त चीजों की समग्रता है । वास्तविक और अवधारित संरचनाएँ,अतीत और वर्तमान की घटनाएँ और प्रतीयमान संघटनायें यथार्थ है । यह यथार्थ हमारी दृष्टि और धारणा, कल्पना और प्रतीति से स्वतंत्र है । वह हमारी संवेदना और अनुभव से भी निरपेक्ष है । हम ही उसका प्रत्यक्ष बोध और अनुभव करते हैं । जिसे हम अनुभव कहते हैं वह दरअसल अनु + भव है – याने 'भव' के अनुसार है । शंकराचार्य ने कहा था – 'ब्रह्म सत्यं, जगत्मिथ्या', लेकिन स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि यदि ब्रह्म सत्य है तो उसकी यह रचना–संसार मिथ्या कैसे हो सकता है ? इसी लिए उन्होंने कहा कि यह संसार न तो माया है, न मिथ्या है, वह तो महज तथ्य – कथन (स्टेटमेंट आव फैक्ट्स) है । सत्य का सन्दर्भ 'जो है' याने यथार्थ है और मिथ्या का सन्दर्भ 'जो नहीं है' याने अयथार्थ है । यथार्थ के विलोम हैं – काल्पनिक और भ्रामक,कल्पित और अमूर्त ।

इस यथार्थ की हमारी अवधारणा, हमारे परिदर्शन, हमारी वृत्ति, हमारे विश्वास पर निर्भर करती है । हम कहते हैं- 'यह मेरा यथार्थ है, तुम्हारा यथार्थ नहीं' । इसीलिए हमारा प्रत्यक्ष बोध ही यथार्थ है । वह विचार और दर्शन जो यह मानता है कि यथार्थ हमारे बोध और अनुभव, परिदर्शन और विश्वास से स्वतंत्र और निरपेक्ष है, यथार्थवाद कहलाता है । कला और साहित्य में समकालीन जीवन-जगत के यथातथ्य विस्तृत और अनलंकृत चित्रण को यथार्थवादी कहा जाता है । यथार्थवाद का विलोम है आदर्शवाद और भाववाद । अब विचार करें सामाजिक यथार्थ पर ....सामाजिक अंतक्रिया से निर्मित संघटनाएँ सामाजिक यथार्थ हैं । यह व्यक्तिगत क्रियाओं और अभिप्रायों को अतिक्रांत करता है । सामाजिक यथार्थ जैविक यथार्थ और व्यक्तिगत ज्ञानात्मक यथार्थ से भिन्न हो सकता है । वह एक समुदाय द्वारा स्वीकृत एवं मान्य ऐसे सामाजिक मतों और सिद्धांतों से निर्मित होता है जो अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं और उस समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं । वह ऐसी एकरूपताओं का समवाय है जिनसे किसी समाज की विशिष्ट पहचान निर्मित होती है । प्रसिद्ध समाजशास्त्री अल्फ्रेड शुट्ज ने सामाजिक यथार्थ के सुनिश्चित स्तर को निर्दिष्ट करने के लिए 'सामाजिक दुनिया'(या संसार) का प्रयोग किया है । कला और साहित्य में सामाजिक यथार्थ के यथातथ्य, विस्तृत और अनलंकृत चित्रण को सामाजिक यथार्थवादी कहा जाता है ।

शशि शर्मा : स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में सामाजिक यथार्थ एक प्रमुख दृष्टि के रुप में अभिव्यक्त हुआ । इसके क्या कारण थे ? क्या सामाजिक यथार्थ दृष्टि को समाजवादी विचारधारा का विकास माना जा सकता है ?

धनंजय वर्मा : ऐसा नहीं है कि सिर्फ स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में ही सामाजिक यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है । हर देश और काल के साहित्य में सामाजिक यथार्थ प्रस्तुत हुआ है । वाल्मीकि ने 'रामायण' में और वेदव्यास ने 'महाभारत' में ही अपने युग के सामाजिक यथार्थ का ही चित्रण किया है ।'साहित्य समाज का दर्पण है' या 'साहित्य जीवन की आलोचना है' सरीखी सूक्तियों का अर्थ ही यह है कि सामाजिक यथार्थ ही साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है । सामाजिक यथार्थ के रूपांतरण में अंतर हो सकता है, होता है, होना चाहिए । हर लेखक कवि या कलाकार सामाजिक यथार्थ को अपनी रचना में अपनी प्रतिभा और प्रकृति के अनुसार रूपांतरित करता है ।

अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापति ।
यथास्मै रोचते विश्वम तथेद परिवर्तते ।।

'इस अपार काव्य–संसार में कवि प्रजापति (ब्रह्मा) की तरह है । उसे जैसा रूचता है, वैसा ही वह इस विश्व को परिवर्तित कर' एक प्रति संसार रच देता है । यहाँ काव्य-संसार से तात्पर्य साहित्यकार और कलाकार है ।

हाँ, स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में सामाजिक यथार्थ के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण की प्रमुखता अवश्य हुई जिसे समाजवादी यथार्थवाद कहा जाता है । यह मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र का एक लाक्षणिक प्रत्यय है, जिसने दुनियाभर के साहित्यों और कलाओं को प्रभावित किया । 1932 से 1980 तक सोवियत रूस के साहित्य में समाजवादी यथार्थवाद की प्रमुखता थी । रूस के महान लेखक लियो टालस्टाय और एंटन चेखव ने अपने सामाजिक यथार्थ के चित्रण में एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया । इसे आलोचनात्मक यथार्थवाद कहा गया । हमारे यहाँ प्रेमचन्द और यशपाल, फणीश्वर नाथ रेणु और नागार्जुन, हरिशंकर परसाई और कमलेश्वर सामाजिक यथार्थ से आगे आलोचनात्मक यथार्थवाद और किसी हद तक समाजवादी यथार्थवाद के लेखक है । समाजवादी यथार्थवाद की प्रमुख विषय–वस्तु एक वर्गहीन और समाजवादी (या साम्यवादी) समाज की रचना होती है । मुक्तिबोध की काव्य वस्तु यही है ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार की कविताओं में सामाजिक यथार्थ का कौन सा रूप आपको अधिक महत्वपूर्ण लगता है ?

धनंजय वर्मा : आधुनिक कविता में सामाजिक यथार्थ, कहानी-उपन्यास या नाटक की तरह सीधे-सीधे चित्रित नहीं होता । उसका बयान भी इतना प्रत्यक्ष नहीं

होता । वह बड़े तिर्यक ढ़ंग से संकेतित होता है और बिम्बात्मक रूप में अभिव्यक्त होता है । टी. एस. इलियट ने कविता को विचार का भावात्मक पर्याय (इमोशनल इक्वीवेलेंट आफ थाट) कहा था । हम उसे 'स्थिति' और 'यथार्थ' की भावात्मक प्रतिक्रिया कह सकते हैं ।

दुष्यंत की कविताओं में समकालीन जीवन का सीधा–सहज साक्षात्कार और उसका प्रत्यक्ष बोध अभिव्यक्त हुआ है । उसमें समकालीन सामाजिक अंतर्विरोधों, विषमताओं और विसंगतियों के प्रति उत्कट प्रतिकार और प्रतिरोध का भाव है । समकालीन जीवन की वास्तविकताएँ, समस्यायें, जटिलतायें और वस्तुस्थितियाँ उसका काव्य–विषय बन गयी हैं । उसके काव्य-नाटक 'एक कंठ विषपायी' में युद्ध की विभीषिका परम्परावाद और आम आदमी की स्थिति और नियति को लेकर गहन चिंतन–मनन है ।

दुष्यंत के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ अपेक्षाकृत अधिक मुखर और मूर्त रूप में अभिव्यक्त हुआ है । 'छोटे-छोटे सवाल' में प्राइवेट स्कूलों की शिक्षा व्यवस्था की विसंगतियाँ उभरी हैं तो 'आँगन में एक वृक्ष' की विषय वस्तु है – मानवीय रिश्तों की समकालीन संक्रांति । वह 'वात्सल्य के जहर' की कहानी है । उसमें सदियों से पवित्र माने जाने वाले वात्सल्य सम्बंधों पर जायदाद का संघर्ष हावी हो गया है – यहाँ तक कि ममता भी कलंकित हुई है ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार के काव्य में व्यंग्य एक केंद्रीय विशेषता के रुप में नजर आती है । क्या उनके व्यंग्य की तुलना कबीर,निराला और नागार्जुन से की जा सकती है ?

धनंजय वर्मा : आप गौर करें – शब्द की तीन शक्तियाँ होती है – अभिधा, लक्षणा और व्यंजना । साहित्य में अभिधा की बजाय लक्षणा और उससे भी अधिक व्यंजना का प्रयोग होता है इसीलिए साहित्य मूलत: व्यंजक, व्यंजनात्मक कहा जाता है याने ध्वन्यार्थ में ही काव्य और साहित्य का सौंदर्य निहित है । इस अर्थ में सारा काव्य और साहित्य व्यंग्य है । लेकिन अब व्यंग्य का अर्थ सीमित और विशेषीकृत हो गया है । वह अंग्रेजी के 'सटायर' के अर्थ तक महदूद हो गया है । उसमें कटाक्ष और उपहास का भाव आ गया है । मैं समझता हूँ कि दुष्यंत न तो व्यंगयकार है और न व्यंग्य कवि । उसके काव्य में सामाजिक विषमताओं और विसंगतियों पर चोट जरूर है लेकिन कबीर, निराला या नागार्जुन की तरह उसमें व्यंग्य की प्रधानता नहीं है । मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि दुष्यंत कुमार के काव्य में व्यंग्य एक केंद्रीय विशेषता के रूप में नजर आता है ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार जिस समय सृजनरत थे, उस समय साम्प्रदायिकता एक ज्वलंत समस्या बनी हुई थी और कई रचनाकार उसपर अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त

कर रहे थे । दुष्यंत कुमार के अभिन्न मित्र कमलेश्वर ने अपनी कई कहानियों एवं उपन्यासों में साम्प्रदायिकता की विभीषिका को चित्रित किया है किंतु मुझे दुष्यंत के काव्य–संसार में साम्प्रदायिकता से सम्बंधित एक भी कविता दिखाई नहीं पड़ी । दुष्यंत कुमार जैसा रचनाकार जिसने आपातकालीन तानाशाही की धज्जियाँ उड़ाकर रख दी, उसने इस विषय पर क्यों कुछ नहीं लिखा ? क्या यह उनके कवि की सीमा है ?

धनंजय वर्मा : दुष्यंत के काव्य संसार में आपको साम्प्रदायिकता से संबंधित एक भी कविता दिखाई नहीं दी तो इसलिए कि उसने इस विषयवस्तु पर कभी कुछ लिखा ही नहीं । यह कवि की सीमा कैसे हुई ? क्या यह जरूरी है कि हर कवि दुनिया की हर समस्या या विभीषिका पर कुछ लिखे ही ! और यह आपसे किसने कह दिया कि दुष्यंत ने 'आपातकालीन तानाशाही की धज्जियाँ उड़ाकर रख दी'..... ऐन आपातकाल में भोपाल में एक लेखक सम्मेलन हुआ था । उसमें वह मौजूद था । उसने न तो आपातकाल का समर्थन किया न विरोध । वह तब शासकीय सेवा में था और शासकीय सेवक की एक आचार संहिता होती है । हम सब उससे बँधे हुए थे । और लोगों की तरह उसने भी मौन रहना ही बेहतर समझा । मुझे रूस के एक लेखक आइजेक बेबेल की एक बात याद आ रही है । रूस में जब स्टालिन का दमनचक्र चला तब कई कवियों-लेखकों ने लिखना बन्द

कर दिया । बेबेल से किसी ने पूछा – आपने लिखना क्यों बन्द कर दिया ? बेबेल ने उत्तर दिया – कौन कहता है कि मैंने लिखना बन्द कर दिया । मैं तो मौन की (एक नयी) विधा का अभ्यास कर रहा हूँ । (आइ एम प्रैक्टीसिंग द जेनर आफ साइलेंस).....

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार ने 'साये में धूप' जैसे कृति लिखकर हिन्दी साहित्य को नई पहचान दी, उनकी कविताओं के सम्मोहन से पाठक खुद को बचा नहीं पाते हैं, नेतागण उनकी पंक्तियों को अपने भाषणों में प्रयुक्त करते हैं और सिनेमा में उनके गज़लों का प्रयोग कर सिनेमा को सशक्त बनाया जाता है, फिर भी उन्हें वह अपेक्षित सम्मान नहीं मिला, जिसके वे हकदार थे । उनकी रचनाशीलता को किसी भी महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय पुरस्कार से नवाजा नहीं गया । इसकी क्या वजह रही होगी ? क्या वे पुरस्कार वितरण की राजनीति के शिकार हुए या कुछ और वजह है ?

धनंजय वर्मा : आपके वक्तव्यनुमा इस प्रश्न के पहले चार वाक्यों से ही साफ होता है कि दुष्यंत की 'साये में धूप' को कितना सम्मान मिला है । रचना और रचनाकार का वास्तविक और स्थायी सम्मान पाठकों के बीच होता है । वह दुष्यंत को भरपूर मिला और मिल रहा है । उसे कोई राष्ट्रीय की कौन कहे प्रादेशिक पुरस्कार तक नहीं मिला लेकिन उसकी गज़लों की लोकप्रियता, उसके काव्य-

नाटक की कलात्मक उत्कृष्टता की स्वीकृति और मान्यता ही उसका सच्चा पुरस्कार है । पुरस्कारों में राजनीति और कुशल प्रबंधन का बोलबाला लगभग सदा से ही रहा है । इधर उसमें खूब इजाफा हुआ है । यहाँ तक कि नोबेल पुरस्कार भी उससे अछूता नहीं है । दुष्यंत वह सब नहीं कर पाया । वह कितनी जल्दी चला भी तो गया ।....

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार की कविताओं पर उनके अन्य समकालीन कवियों की तुलना में आलोचना भी कम हुई है । इसकी क्या वजह हो सकती है ?

धनंजय वर्मा : दुष्यंत को आरम्भ से ही पर्याप्त आलोचनात्मक स्वीकृति, मान्यता और प्रशंसा मिली । 'सूर्य का स्वागत' का जैसा स्वागत हुआ, वह अभूतपूर्व था । मैंने उसकी कविताओं पर, काव्य-नाटक और उपन्यासों पर पहले-पहल 'ज्ञानोदय', 'माध्यम', 'सारिका' आदि पत्रिकाओं में लिखा । उसके काव्य-नाटक पर मेरे निर्देशन में शोध-प्रबंध लिखा गया । उसके समग्र अवदान पर भी खूब लिखा गया है । कई विश्वविद्यालयों में उसके साहित्य पर शोध-प्रबंध लिखे गये, लिखे जा रहे हैं । आधुनिक हिन्दी साहित्य में उसकी अपरिहार्य उपस्थिति और उसके महत्व से कोई इंकार नहीं कर सकता ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार के साथ आपका व्यक्तिगत परिचय भी रहा है । क्या आप उनके साथ जुड़ी हुई कुछ विशेष यादें हमारे साथ बाँटना चाहेंगे ?

धनंजय वर्मा : अपनी पुस्तक 'एक आवाज : सबसे अलग (दुष्यंत की रचनाशीलता) में मैंने दुष्यंत के पत्रों के माध्यम से अपने व्यक्तिगत सम्बंधों का जायजा लिया है । उन पत्रों में–से अभिव्यक्त उसके व्यक्तित्व की कुछ छवियाँ भी उसमें नुमायाँ होती है । उसे यहाँ दुहराऊँगा नहीं ।

शशि शर्मा : आपका बहुत–बहुत धन्यवाद ।

डॉ. विजयबहादुर सिंह से श्रीमती शशि शर्मा का संवाद

शशि शर्मा : आपकी दृष्टि में सामाजिक यथार्थ की परिभाषा क्या है ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : इसका संबंध मार्क्सवाद से है । नहीं भी है । समाजवादी और सामाजिक में फर्क है । सामाजिक यथार्थ निराला में भी है । प्रेमचन्द में भी । पर समाजवादी यथार्थ तो तो यशपाल, राहुल, रांगेय राघव में है । जीवन– वास्तवों की अभिव्यक्ति ही सामाजिक यथार्थ है मेरी दृष्टि में । उदाहरण के लिए मुक्तिबोध सामाजिक यथार्थ से जुड़े लोगों को जनवादी और समाजवादी यथार्थ से जुड़े लोगों को प्रगतिवादी कहते हैं ।

शशि शर्मा : स्वातंत्रयोत्तर साहित्य में सामाजिक यथार्थ एक प्रमुख दृष्टि के रूप में अभिव्यक्त हुई–इसकी क्या कारण थे ? क्या सामाजिक यथार्थ दृष्टि को समाजवादी विचारधारा का विकास माना जा सकता है ? यदि हाँ, तो किस तरह और यदि ना तो क्यों ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : समाजवादी विचारधारा ने उस समूची यथार्थवादी परंपरा को हाइजैक कर लिया है जो सामाजिक यथार्थ वाली थी । चाहे प्रेमचन्द हों या

आचार्य शुक्ल सबको । यह बहस जारी है ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार की कविताओं में सामाजिक यथार्थ का कौन-सा रूप आपको अधिक महत्त्वपूर्ण लगता है ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : प्रत्येक कवि की चेतना जितना अपने खुद के व्यक्तित्व से टकराती है उतनी ही वह अपने चतुर्दिक उपस्थित सामाजिक जीवन से भी टकराती है । सामाजिक हकीकतें उसकी चेतना को तरह तरह से मजबूर करने और भीड़ में शामिल होने और होकर जीने की कोशिशों में लगी रहती हैं पर स्वभावत: मौलिक और परिणामत: विद्रोही होने के चलते वह प्राय: घुटने नहीं टेकता और अपने शब्दों के उजाले में तमाम प्रतिकूल अँधेरों के बावजूद चलता रहता है । दुष्यंत कुमार भी ऐसे ही कवि थे । तभी तो वे कुण्ठा, उदासी और निराशा के घनघोर अँधेरे में 'सूर्य का स्वागत' लेकर आए । उनकी कविता में नयी मनुष्यता की उम्मीद थी । नयी सामाजिकता का आवाहन था, इसलिए यथार्थ का चेहरा वहाँ वह नहीं था जो धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' में था । यह बहुत कुछ कवि की चेतना और उसकी दृष्टि पर निर्भर करता है कि वह आलोचनात्मक यथार्थ की ओर जाए या फिर आशावादी स्वस्थ यथार्थ की ओर । दुष्यंत दूसरे यथार्थ के लेखक थे । मनुष्य की जिजीविषा, स्वाभिमान, आत्मविश्वास, जुझारूपन और उम्मीद के लेखक ।

'कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता, एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो' जैसा कथन वे इसीलिए कर पाए क्योंकि मनुष्य की कर्मठता और पौरूष में उन्हें भारी विश्वास था ।

शशि शर्मा : मैंने पढ़ा है कि उनके 'सूर्य का स्वागत'संग्रह की प्रशंसा करते हुए कवि दिनकर ने कहा था कि 'प्रयोगवादियों के सड़ाँध से बचने के लिए इस फूल को सूँघना जरूरी है ।' दुष्यंत कुमार जो अपनी पहली ही रचना से पाठक वर्ग में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराते हैं, अपने प्रथम दो संग्रहों में पाठकीय संवाद स्थापित नहीं करते हैं, फिर अचानक वे 'जलते हुए वन का वसंत' में पाठकीय संवाद स्थापित करते हैं और अपने सृजन-सरोकारों के बारे में बताते हैं, मैं यह जानना चाहती हूँ कि कवि को दो संग्रहों की सफलता के उपरांत अचानक अपने सरोकारों को स्पष्ट करने की जरूरत क्यों महसूस होती है ? अपने आपको को पाठक वर्ग के द्वारा नई कविता के बीच 'प्लेस' बनाने की आकांक्षा क्यों पैदा होती है ? (कवि का व्यक्तव्य है – यह मेरी कविताओं का तीसरा संग्रह है । पहले दोनों संग्रहों में सिर्फ कविताएँ थीं, भूमिका नहीं । इसमें इस छोटी-सी भूमिका द्वारा मैंने पाठक से संलाप की स्थिति पैदा की है । शायद इधर की नई कविताओं में कविता खोजने की उसकी कोशिश को इससे कुछ बल मिले या शायद उसके बीच मुझे 'प्लेस' करने में उसे सुविधा हो ।)

डॉ. विजयबहादुर सिंह : वे एक बेहद बेचैन किस्म के आदमी और रचनाकार थे। पाठकीय संवाद तो वे हमेशा या कहें शुरू से ही कर रहे थे। उनकी कविता अमूर्त शैली की संप्रेषण-जटिल कविता नहीं थी। प्रतीकों की तरफ वे भी जाते थे, 'जलते हुए वन का वसंत' का प्रतीक देखें पर पाठक की ग्रहणशीलता की सीमा उन्हें मालूम थी। फिर वे गाँव के वृहत्तर लोक में पले-बढ़े कवि थे। इसलिए उनमें शहरी मध्यवर्गीय अकेलापन भी नहीं था। शहरी जीवन की अपनी फितरतें होती हैं। गाँव में आदमी चाहे भी तो अकेला नहीं हो सकता। उसकी चेतना में सामूहिकता की बसाहट होती है। प्रेमचन्द, रेणु, नागार्जुन, निराला – ये तमाम लोग गाँव के लोग थे। इसलिए खुली–फैली तबीयत थी इनकी। इलाहाबाद, दिल्ली और भोपाल के जीवन में आने पर दुष्यंत की चेतना स्वचित प्रभावित भी हुई होगी। 'आवाजों के घेरे' में यह लक्षित भी किया जा सकता है। पर 'एक कंठ विषपायी' में फिर वे अपने मुख्य पथ और स्वभाव पर आ जाते हैं। 'जलते हुए वन का वसंत' में उनको लगा कि जमाने के आलोचकों को दरकिनार कर पाठक पर ही भरोसा कवि के लिए सेहतमन्द है। 'साये में धूप' तो इसका जीता–जागता प्रमाण है।

अगर उनकी चेतना सामाजिक दृष्टि से ऐसी न होती तो वे ऐसी गज़लें कभी न लिख पाते। नई कविता के कई शेड्स हैं। उसमें मुक्तिबोध भी आते

हैं । दुष्यंत का अपना शेड्स है और मुहावरा भी ।

शशि शर्मा : एक सरकारी मुलाजिम होते हुए भी आपातकाल पर दुष्यंत कुमार ने बहुत–सी कविताएँ लिखी है । यहाँ तक की उन्होंने अपने कई शे'रों में तत्कालीन सत्ता की तानाशाही का प्रतिवाद भी 'ये जुबा हमसे सी नहीं जाती' कहकर किया है, फिर 'एक बूढ़ा आदमी है मुल्क में या यों कहो –, इस अँधेरी कोठरी में एक रोशनदान है।' में बूढ़ा आदमी को विनोवा भावे कहकर वे खुद को संकट से बचाते हैं, ऐसा क्यों, क्या उनका व्यक्ति उनके कवि पर हावी था ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : आपने छापामार लड़ाइयों और लड़ाकुओं के बारे में जरूर सुना होगा। वे भी बहादुर ही होते हैं पर अपनी ताकत और सैन्यबल की सीमा के साथ सत्ता के भारी अस्त्र–शस्त्र और सैन्यबल से भी परिचित होते हैं । साहित्य भी कभी–कभी ऐसी छापामार शैलियों में उतरता है । शिवाजी क्या करते थे आखिर । औरंगजेब यूँ ही नहीं उन्हें पहाड़ी चूहा कहता था । पर हम तो शिवाजी को शिवाजी ही मानते हैं ।

दुष्यंत का ही कलेजा था जो 'ईश्वर को सूली' जैसी कविता लिखकर अपने को प्रमाणित कर सके । कविता में जो कहना था, वह धड़ल्ले से कह गए । अब जो सरकार से अपनी बचत के लिए कहना है, उसमें नीतित: अगर चालाकी बरतनी पड़े तो आत्मरक्षा के लिए ऐसा करना भी चाहिए । कवि के रूप

में साहस और ईमानदारी, सरकारी मुलाजिम के रूप में चालाकी ।

इससे कवि-व्यक्तित्व पर क्या असर पड़ता है । कवि तो बदलता नहीं । हमेशा ही अन्याय के विरूद्ध लड़ता रहता है । दुष्यंत ने शायद ही कभी ऐसा किया हो ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार की एक कविता है ' नई राह', इस कविता में कवि अपने लेखन की तुलना अपने कई समकालीन कवियों जैसे नरेश मेहता, शमशेर बहादुर सिंह, शम्भुनाथ सिंह, रमानाथ अवस्थी, धर्मवीर भारती, केदारनाथ अग्रवाल आदि से करते हुए अपने लेखन को इनसे श्रेष्ठ ठहराते हैं । इतना ही नहीं वे छायावादी कवि पंत, निराला और प्रसाद से भी खुद को बेहतर मानते हैं, आपने दुष्यंत कुमार रचनावली भाग –1 की प्रस्तावना में लिखा है कि यह उनका असाधारण आत्मविश्वास है, क्या यह सचमुच उनका असाधारण आत्मविश्वास ही है या बड़बोलापन जो भावावेग की तीव्रता से निःसृत हुआ है ।

डॉ. विजयबहादुर सिंह : इसमें उनकी अतिरिक्त भावुकता नहीं, गँवई भोलापन ही ज्यादा है । तब भी उनका यह सोचना तो था ही कि वे परम्परा की ऐसी औलाद हैं जिनसे नई फसल लहलहानी है । और यह उन्होंने गज़लों के मार्फत कर भी दिखाया । असल में वे भवानी प्रसाद मिश्र जैसे परम स्वाधीन कवियों वाली राह पर

थे । नई कविता और सप्तक के कवियों पर लिखते हुए उन्होंने ऐसा कहा भी है कि भवानी प्रसाद मिश्र ही तो कवि हैं । कैसा कवि ? वह जो आत्मा की आजादी और देशी बौद्धिकता से संचालित है । वह नहीं जो इस या उस की नकल करता हुआ चलता है । कवि का किसी दबाव में – चाहे विचारधारा का हो चाहे इस या उस कलावाद का-रहना उन्हें मंजूर नहीं था । वे कवि को अपनी रचना का स्वयंभू प्रजापति मानते थे । आत्मविश्वास तो सचमुच उनमें जरूरत से ज्यादा कुछ था ।

छायावादियों की रहस्यबोझिल, स्वप्निल कल्पनाओं वाली कविता उनके लिए अभीष्ट नहीं थी । तथापि शुरूआत में वे सुमित्रानन्दन पंत को अपना काव्य–गुरू मानते थे । पर इलाहाबाद में मार्कण्डेय, कमलेश्वर का साथ पाकर वे लगभग बदल से गए । तब भी अपने रोमानी स्वभाव से बाज तो नहीं आए । उनकी यही स्वच्छन्दता उन्हें निरंतर गतिशील बनाए रही और बदलती भी रही।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार ने बहुत सारी कविताएँ लिखी है, फिर भी कुछ ऐसे विषय है जिनपर उन्होंने बहुत कुछ नहीं लिखा है, उसमें गहराई का अभाव दिखता है, जैसे किसान–मजदूर पर उन्होंने बहुत कम कविता लिखी है, इसी तरह समाज में नारी की स्थिति पर भी उन्होंने विस्तार से कुछ नहीं लिखा, उनकी रचनाओं से गुजरते हुए मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इन विषयों को उन्होंने बस यू ही उठा लिया– इस संबंध में आप क्या कहना चाहेंगे ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : अगर आप उनके गीतों को देखें तो किसान-मजदूर पर उनकी कविताएँ हैं । यों कोई कवि विषय तय करके नहीं लिखता । पंत ने लिखा तो उनकी कविता कहाँ से कहाँ जा पहुँची, आप सोचें । कविता अनुभवों से फूटी भाषा है, उन्हीं की जुबान में । पर जब वो यह कह रहे थे – ' कल नुमाइश में मिला वो चिथड़े पहने हुए / मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्तान हैं ।' पहली गज़ल में भी आम किसान और गरीब आदमी है । कविता में विषय का साइन बोर्ड लेकर घूमना कवि का लक्षण नहीं है । दुष्यंत तो खुद किसान-पुत्र थे । खुद भी पिताजी के बाद खेती–किसानी करवाते थे । तब जो दर्द या गुस्सा था, उसे हम किसका मानेंगे ?

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार जिस समय सृजनरत थे, उस समय साम्प्रदायिकता एक ज्वलंत समस्या बनी हुई थी और कई रचनाकार उसपर अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त कर रहे थे । दुष्यंत कुमार के अभिन्न मित्र कमलेश्वर ने अपनी कई कहानियों एवं उपन्यासों में साम्प्रदायिकता की विभीषिका को चित्रित किया है किंतु मुझे दुष्यंत के काव्य–संसार में साम्प्रदायिकता से सम्बंधित एक भी कविता दिखाई नहीं पड़ी । दुष्यंत कुमार जैसा रचनाकार जिसने आपातकालीन तानाशाही की धज्जियाँ उड़ाकर रख दी, उसने इस विषय पर क्यों कुछ नहीं लिखा ? क्या यह उनके कवि की

सीमा है ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : मैंने पहले भी कहा दुष्यंत विषय तय करके नहीं लिखते थे । पर जब वो अपने को उर्दू–हिन्दी के बीच खड़ा करके देखते थे । गालिब या मीर की याद करते थे तब समझना चाहिए कि वे कैसे भी बँटवारे, कैसी भी संकीर्णता, कैसे भी कठमुल्लापन के खिलाफ थे । समाज, देश, भाषा, धर्म वे किसी भी सांप्रदायिक कटघरे के खिलाफ थे । उनका कवि एक व्यापक अर्थ में हिन्दी का कम हिन्दुस्तानी का अधिक था पर संस्कारों में जो भाषा मुहावरे उनके थे, उनके प्रयोग के चलते प्राय: मान लिया जाता है कि वे अन्यों की ही तरह थे ।

कवि की सीमा मापने से कहीं अधिक जरूरी होता है कवि की गति और व्यापकता को समझना । कौन किधर नहीं गया, जैसे कि प्रसाद हास्य की तरफ नहीं गए, कबीर वात्सल्य चित्रण की ओर नहीं गए तो क्या इसे सीमा कह उनकी महत्ता का निषेध करें ?

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार ने 'साये में धूप' जैसे कृति लिखकर हिन्दी साहित्य को नई पहचान दी, उनकी कविताओं के सम्मोहन से पाठक खुद को बचा नहीं पाते हैं, नेतागण उनकी पंक्तियों को अपने भाषणों में प्रयुक्त करते हैं और सिनेमा में उनके गज़लों का प्रयोग कर सिनेमा को सशक्त बनाया जाता है, फिर भी उन्हें वह अपेक्षित सम्मान नहीं मिला, जिसके वे हकदार थे । उनकी रचनाशीलता को किसी

भी महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय पुरस्कार से नवाजा नहीं गया । इसकी क्या वजह रही होगी ? क्या वे पुरस्कार वितरण की राजनीति के शिकार हुए या कुछ और वजह है ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : आप जिन सम्मानों और पुरस्कारों की बात कर रही हैं, वे सब साहित्यिक समकालीनों द्वारा दिए-लिए जाते हैं । बगैर कोशिश और सिफारिश के ये खेल कभी–कभी ही होते हैं । पर जैसा आप कह रही हैं, उनकी लोकप्रियता व्यापक थी, भारत सरकार ने उनपर डाक टिकट जारी किया, भोपाल नगर निगम ने उनके नाम एक बड़ी सड़क का नाम कर दिया । 'साये में धूप' के संस्करण पर संस्करण हो रहे हैं । वे हिन्दी गज़ल के प्रवर्तक माने जा रहे हैं, निराला और शमशेर के बावजूद । तब और कैसी लोक स्वीकृति चाहिए ?

जनता के कवि होकर वे अपनी जनता में प्रिय कवि के रूप में जीवित हैं । और क्या चाहिए ?

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार की कविताओं पर उनके अन्य समकालीन कवियों की तुलना में आलोचना भी कम हुई है । इसकी क्या वजह हो सकती है ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : आपने सारिका का दुष्यंत अंक जरूर देखा होगा । उसके बाद भी उन पर काफी कुछ लिखा जाता है । आलोचक कम हैं रचना कुछ ज्यादा

ही ।

आजकल जैसी अंधी हवा चल रही है उसमें आलोचक खेमेबंदी के शिकार तो हैं ही, विचारधारा और संगठनों के गुलाम भी हैं । इनके द्वारा प्रचलित नामों पर ही काम करते हैं ।

दुष्यंत से पहले भवानी प्रसाद मिश्र थे । उन पर भी बहुत कम काम हुआ क्योंकि लीक से हटकर चल रहे थे । तब जो स्वाधीन साहित्यिक विवेक का कवि होगा, वही अलक्षित रहेगा । स्वाधीन विवेक वाला आलोचक ही उसका मूल्यांकन कर पाएगा । हमें इसकी प्रतीक्षा करनी है ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार रचनावली तैयार करते समय आपका सबसे खास अनुभव क्या रहा ? क्या आप हमें कुछ बताना चाहेंगे ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : उनकी अधिकांश चीजें अव्यवस्थित थीं । पर चमत्कार यह कि आठवीं-नौवीं की कापियाँ भी सहेज कर रखी हुई थीं । वह रजिस्टर भी जो 'साये में धूप' वाला था । यह उन जैसे आदमी ने कैसे किया होगा, श्रीमती राजेश्वरी दुष्यंत ने इसमें कवि की कितनी मदद की होगी, कहना कठिन ।

वे बेहद स्फूर्ति वाले आदमी थे । अकूत क्षमतावान । न कभी झुकने और टूटनेवाले । साहसी, उन्मुक्त, संकोचहीन और बेतकल्लुफ । दोस्तों पर

जान छिड़कनेवाले । जबरदस्त मर्दानी तबीयत थी उनकी पर दुनियादारी में भी अव्वल थे । सो भी कैसी — अन्यों पर हावी होनेवाली दुनियादारी । खूबसूरत तो खैर वे थे ही ।

अपनी रचनाशीलता के दायरों के प्रति भी बेहद सचेत, अपनी प्रतिभा के प्रति बेहद आश्वस्त । आत्मालोचन की वृत्ति भी खूब थी उनमें । पर दूसरों को लेकर अगर वह विरोधी है तो उसे धूल चटाने में भी अव्वल ।

अपनी रचनाओं पर खूब मेहनत करते थे । संतुष्ट होने पर ही फाइनल मानते थे । गद्य की भी उनमें जबरदस्त प्रतिभा थी । पर वे जिस तरह स्वयं को बाँटे और बिखेरे रहते थे उसमें बड़ा और धीरजवाला काम हो नहीं पाता था । न संभव था ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार के साथ आपका व्यक्तिगत परिचय भी रहा है । क्या आप उनके साथ जुड़ी हुई कुछ विशेष यादें हमारे साथ बाँटना चाहेंगे ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : मैं तो उम्र में उनसे आठ-नौ साल छोटा था । पर जब मैं प्रभाकर क्षोत्रिय के बुलावे पर पहली बार 1972 में भोपाल में काव्य-पाठ करने गया, शरद जोशी की जगह वे ही मेरे पाठ के अध्यक्ष थे । मेरे साथ–साथ नवजात आई.ए.एस सुदीप बनर्जी भी थे तभी से मैं उनकी निगाह में आया । पढ़ तो मैं

64-65 से रहा था । 1974 में जब गज़लें आई तो मेरा उनका नियमित पत्राचार चला । उनकी कुछ खूबसूरत चिठियाँ विदिशा के दोस्तों के बीच ही गायब हो गई । मैं उन्हें विदिशा बुला भी रहा था, वे तैयार भी थे पर मौका नहीं मिला । टलता ही गया, फिर भी उनका स्नेह मुझे मिलता रहा और वे अपनी ताजी गज़लें सुनाते थे मिलने पर ।

मेरी पत्नी के ट्रांसफर के सिलसिले में एक दिन जो इतवार का था – उन्होंने पूरा जाया किया । आपातकाल के दिनों में मिलने पर वे अपनी खुशियाँ और मुश्किलें शेयर करते थे । उनके छोटे भाई 'मुन्नूजी' जिन्हें 'साये में धूप' समर्पित है – मेरे अंतरंग और भरोसेमन्द दोस्त थे । वे भी अब नहीं रहे । फिर भी भाभी के पास, बेटे आलोक के पास, बहू मानू के पास तो जाना–आना चलता ही रहता है ।

मानू कमलेश्वर की इकलौती बेटी और उत्तराधिकारी दुष्यंत की पुत्रवधू है । गायत्री कमलेश्वर भी मुझे प्यार करती और आदर देती हैं । लगभग परिवार जैसा आत्मीय मामला है ।

शशि शर्मा : आपका बहुत–बहुत धन्यवाद ।

ग्रंथानुक्रमणिका

अन्न है मेरे शब्द – 62, 411

आधुनिक कवि: निराला -185,411

आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द-59, 411

आधुनिक हिन्दी कविता में वैचारिक पक्ष-411,

आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द-57, 58, 411

आवाजों के घेरे - 66, 85, 401

आस्था और सौंदर्य-295,412,

इक्कीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य : समय, समाज और संवेदना-412

इतिहास और आलोचना-61, 412

एक आवाज : सबसे अलग दुष्यंत की रचनाशीलता-412

कबीर-61, 234, 412

कबीर ग्रंथावली – 61, 412

कवि अज्ञेय :विश्लेषण और मूल्यांकन-292, 412

कविता का आत्मपक्ष-292, 388, 390, 412

कविता की जमीन और जमीन की कविता- 388, 412

कविता की लोकधर्मिता-292,413

काव्य–सृजन और शिल्प-विधान - 190, 389, 413

कुछ विचार-57,58, 60,62,413

गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम-57, 58, 59, 234, 235, 413

गाँधी : समय, समाज और संस्कृति -413

चिंतामणि भाग-1 – 295, 413

चिंतामणि भाग-3– 292, 413

जलते हुए वन का वसंत – 66, 78, 91, 92

दुष्यंत कुमार और नयी कविता : एक अनुशीलन–108; 413

दुष्यंत कुमार की गज़लों का समीक्षात्मक अध्ययन-110, 294, 413

दुष्यंत कुमार : रचनाएँ और रचनाकार-109, 414

नयी कविता के प्रबंध काव्य शिल्प और जीवन दर्शन-390, 414

निबंधों की दुनिया - 60, 414

निराला-388, 414

पल्लव- 393,414

पंत की काव्य भाषा शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण -390,414

प्रतिनिधि कविताएँ रघुवीर सहाय-62, 414

बलदेव वंशी का काव्य: सामाजिक यथार्थ-56, 60, 414

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना-390 ,392, 394, 414

भारतीय संविधान और राजनीति-183, 415

मैं वह शंख महाशंख-62, 415

यथार्थवाद-56, 57, 58, 59, 60, 415

यथार्थवाद पुर्नमूल्यांकन-56, 57, 59, 60, 415

यारों के यार दुष्यंत कुमार-415

शताब्दी के ढलते वर्षो में-237, 238, 415

समकालीन कविता और कुलीनतावाद – 61, 415

समाजवादी यथार्थवाद और हिन्दी कथा साहित्य-59, 388, 415

समय के सरोकार-187, 415

समांतर कहानी में यथार्थबोध- 59, 415

साहित्यिक निबंध-56, 58, 61, 237, 416

साहित्य और यथार्थ-56, 60,61, 416

सूर्य का स्वागत-74, 76, 77, 78, 79, 81, 82, 83, 85, 266,272, 302, 319, 355, 368, 375, 401, 432, 435, 436

स्त्री मेरे भीतर –62, 416

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में प्रणय-चित्रण – 293, 416

हरिशंकर परसाई : व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि-234, 235,416

हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद-58,60, 416

हिन्दी काव्य-नाटक और युगबोध–416

हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार-235,416

हिन्दी गज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर-239, 416

हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई -234, 235, 417

हिन्दी साहित्य का इतिहास–58, 417

हिन्दी साहित्यशास्त्र - 417

लेखकानुक्रमणिका

अजब सिंह -7, 16, 30,35

अजय तिवारी-44

आचार्य रामचंद्र शुक्ल-23, 244, 269, 369

एकांत श्रीवास्तव -52, 53, 245, 246, 337, 341, 353, 411, 412

कबीर- 45,46, 55, 61, 65, 117, 201, 214, 223, 234, 243, 246, 248, 338, 362, 397, 406, 412, 425, 438

कांति कुमार-78, 87, 94, 310

केदारनाथ सिंह-352

खगेंद्र ठाकुर 125,132, 337,

जार्ज लुकाच-4, 5, 10, 25, 34 242, 283, 289, 290, 340, 397, 405

तुलसीदास-43, 46, 62,75, 11.

धनंजय वर्मा-79, 420, 422, 423, 425, 426, 427, 428, 429

नन्ददुलारे वाजपेयी- 340

नागार्जुन- 49, 50, 65, 117, 201, 207, 281, 338, 404, 406, 423, 425, 433

नामवर सिंह-341

निराला-49, 65, 75, 90, 130, 131, 201, 268, 285, 286, 287, 288, 289, 290, 405, 406, 425, 430, 433, 435, 439

पंत-49, 50, 74, 269, 271, 352, 354, 369, 390, 393, 414, 436, 437

प्रेमचन्द-7, 8, 19, 20, 40, 43, 49, 202, 423, 430

विजय बहादुर सिंह-56, 58, 61, 67, 107, 108, 109, 110, 115, 183-190,201, 235, 236-239, 259, 266, 267, 292-296, 303, 307, 317, 319, 324, 330-334, 344, 388-395, 411, 416, 418

शिव कुमार मिश्र-3, 6, 10, 14, 15, 17, 21, 27, 28, 35

सत्यकाम-8, 11, 13, 25

सुवास कुमार -14, 17, 18, 26, 32, 195, 198

हजारी प्रसाद द्विवेदी-44, 46, 193

हावर्ड फास्ट-4,5

त्रिभुवन सिंह – 2, 11, 16, 20, 23, 24, 37, 38, 41, 237